विशेष: सुलगते-धधकते पहाड़ी जंगलों का पर्यावरण और पारिस्थितिकी पर प्रभाव

संदर्भ एवं पृष्ठभूमि

हर साल गर्मी का मौसम आते ही देश के पहाड़ी राज्यों, विशेषकर उत्तराखंड के जंगलों में आग लगने का सिलसिला शुरू हो जाता है। वार्षिक आयोजन जैसी बन चुकी उत्तराखंड के जंगलों की यह आग हर साल विकराल होती जा रही है, जो न केवल जंगल, वन्य जीवन और वनस्पति के लिये नए खतरे उत्पन्न कर रही है, बल्कि समूचे पारिस्थितिकी तंत्र पर इसके प्रभाव अब दिखाई देने लगे हैं।

क्यों लगती और फैलती है जंगलों में आग?

जंगलों का इस प्रकार धधकना कई तरह के संकटों को निमंत्रण देता है। जंगलों के जलने से उपजाऊ मिट्टी का कटाव तो तेज़ी से होता ही है, साथ ही जल संभरण का काम भी प्रभावित होता है। वनाग्नि का बढ़ता संकट जंगली जानवरों के अस्तित्व पर संकट खड़ा कर देता है। यूं तो आग लगने के कई कारण हो सकते हैं। लेकिन कुछ ऐसे वास्तविक कारण हैं, जिनकी वज़ह से गर्मियों में आग का खतरा हमेशा बना रहता है। जैसे-

- मज़दूरों द्वारा शहद, साल के बीज जैसे कुछ उत्पादों को इकट्ठा करने के लिये जान-बूझकर आग लगाना।
- कुछ मामलों में जंगल में काम कर रहे मज़दूरों, वहाँ से गुज़रने वाले लोगों या चरवाहों द्वारा गलती से जलती हुई कोई चीज वहाँ छोड़ देना।
- आस-पास के गाँव के लोगों द्वारा दुर्भावना से आग लगाना।
- जानवरों के लिये हरी घास उपलब्ध कराने के लिये आग लगाना।
- प्राकृतिक कारणों में बिजली गिरना, पेड़ की सूखी पत्तियों के मध्य घर्षण, तापमान की अधिकता, पेड़-पौधों में शुष्कता आदि शामिल हैं।

लेकिन वर्तमान में वनों में अतिशय मानवीय अतिक्रमण/हस्तक्षेप ने वनों में लगने वाली आग की बारम्बारता को बढ़ाया है। विभिन्न प्रकार के मानवीय क्रियाकलापों जैसे-पशुओं को चराना, झूम खेती, बिजली के तारों का वनों से होकर गुज़रना तथा वनों में लोगों का धूम्रपान करना आदि से ऐसी घटनाओं में वृद्धि हुई है।

झूम खेती क्या है?

झूम खेती के तहत पहले वृक्षों तथा वनस्पतियों को काटकर उन्हें जला दिया जाता है| इसके बाद साफ की गई भूमि को पुराने उपकरणों (लकड़ी के हलों आदि) से जुताई करके बीज बो दिये जाते हैं। फसल पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर होती है और उत्पादन बहुत कम हो पाता है। कुछ वर्षों (प्रायः दो या तीन वर्ष तक), जब तक मृदा में उर्वरता बनी रहती है, इस भूमि पर खेती की जाती है। इसके पश्चात् इस भूमि को छोड़ दिया जाता है, जिस पर पुनः पेड़-पौधे उग आते हैं। अब अन्यत्र वन भूमि को साफ करके कृषि के लिये नई भूमि प्राप्त की जाती है और उस पर भी कुछ ही वर्ष तक खेती की जाती है। इस प्रकार झूम कृषि स्थानानंतरणशील कृषि है, जिसमें थोड़े-थोड़े समयांतराल पर खेत बदलते रहते हैं।

(टीम दृष्टि इनपुट)

- जंगल की आग को आर्थिक एवं पारिस्थितिकी नज़रिये से नहीं देखा जाता।
- वनाग्नि के प्रबंधन हेतु तकनीकी प्रशिक्षण की व्यवस्था भी लगभग नहीं है।
- अव्यावहारिक वन कानूनों ने वनोपज पर स्थानीय निवासियों के नैसर्गिक अधिकारों को खत्म कर दिया है, इसके परिणामस्वरूप ग्रामीणों और वनों के बीच की दूरी बढ़ी है।
- जंगलों से आम आदमी का सदियों पुराना रिश्ता कायम किये बिना जंगलों को आग और इससे होने वाले नुकसान से बचाना सरकार और वन विभाग के वश में नहीं है, लेकिन इस वास्तविकता को स्वीकारने के लिये कोई तैयार नहीं है।

चीड़ का मोनोकल्चर है आग के लिये प्रमुख ज़िम्मेदार

पहाड़ के जंगलों में आग लगना एक स्थायी समस्या है। 2005 से 2015 के बीच कुमाऊँ के वनों में आग लगने की लगभग 2238 घटनाएँ दर्ज हुईं। इसमें लगभग 5356.77 हेक्टेयर वन आग की भेंट चढ़ गए थे। आग की इन घटनाओं में करोड़ों रुपए मूल्य की वन संपदा जलकर नष्ट हो गई। अनेक प्रजातियों के नवजात पौधे, दुर्लभ जड़ी-बूटी और वनस्पति आग में नष्ट हो गई। अनगिनत वन्य जीव और पशु-पक्षी जलकर मर गए। किसी वार्षिक त्योहार की तरह यह क्रम आज

भी जारी है।

- पहाड़, विशेषकर कुमाऊँ क्षेत्र चीड़ के जंगलों से भरा है और चीड़ की पत्तियाँ जिन्हें स्थानीय भाषा में पिरूल कहा जाता है, आग के फैलने का सबसे बड़ा कारण बनती हैं। दरअसल, चीड़ के पेड़ के भले ही कुछ फायदे हों, लेकिन इसके नुकसान भी कम नहीं हैं। यह ठीक है कि चीड़ की लकड़ी फर्नीचर बनाने के काम तो आती ही है, साथ ही पहाड़ों में घर बनाने में अधिकतर इसी लकड़ी का इस्तेमाल होता है।
- दूसरा सबसे बड़ा फायदा सरकार के साथ-साथ स्थानीय ठेकदारों और श्रमिकों को होता है, जो इस समय चीड़ के पौधों से लीसा (चीड़ के पेड़ से निकलने वाला एक बहुपयोगी तरल पदार्थ) निकालने का कार्य शुरू करते हैं और यह दिसंबर तक चलता है। लीसा एक ऐसा तरल द्रव्य है जिसमें आग लगने पर यह पेट्रोल पर लगी आग की तरह फैलती है।
- चीड़ से होने वाले नुकसान की बात की जाए तो यह एक ऐसा पेड़ है कि जहाँ उग जाए वहाँ मिट्टी की उर्वरा शक्ति खत्म कर देता है। यह अक्सर सूखी या शुष्क भूमि पर उगता है जिसे पानी की ज़रूरत नहीं होती, बल्कि यह पानी के स्रोतों को खत्म करने का काम करता है तथा मिट्टी की पकड़ को भी कमज़ोर कर देता है।
- गर्मी में तो इसकी पत्तियों में आग तेज़ी से फैलती है और इसीलिये भयावह हो जाती है। पहाड़ों में जंगल आपस में एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं और हवा के साथ पिरूल होने के कारण आग और भयावह होते हुए कई जंगलों में फैल जाती है।

(टीम दृष्टि इनपुट)

वनाग्नि से पारिस्थितिकी पर पड़ने वाले प्रभाव

- वनों की जैव विविधता को हानि।
- वनों के क्षेत्र विशेष एवं आस-पास के क्षेत्र में प्रदूषण की समस्या में वृद्धि।
- मृदा की उर्वरता में कमी।
- ग्लोबल वार्मिंग में सहायक गैसों का अत्यधिक उत्सर्जन।
- खाद्य श्रृंखला का असुंतलन।
- वनों में आग की इन घटनाओं में वन संपदा का भारी नुकसान तो होता ही है, साथ ही अनेक प्रजातियों के पौधे, दुर्लभ जड़ी-बूटियाँ और वनस्पतियाँ भी नष्ट हो जाती हैं।
- जंगल में लगी आग से जैव विविधता को नुकसान पहुँचता है तथा वन्य जीव भी अपनी जान बचाने के लिये यहाँ-वहाँ भागते फिरते हैं।
- भीषण आग में अनेक प्रजातियों के जीव-जंतुओं और वनस्पतियों की विभिन्न प्रजातियों के विलुप्त होने की आशंका बनी रहती है, जिससे भविष्य में पारिस्थितिकी संकट उत्पन्न हो सकता है।

क्षेत्र विशेष की अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव

- वनों के आस-पास रहने वाले उन आदिवासियों व लोगों का आजीविकाविहीन हो जाना, जिनकी आजीविका वनोत्पादों पर निर्भर होती है।
- वनों पर आधारित उद्योगों एवं रोज़गार की हानि।
- वनों पर आधारित पर्यटन उद्योग को नुकसान।
- वनों की कीमती लकड़ी की हानि।
- वनों में मिलने वाली औषधीय गुणों से युक्त वनस्पतियों की हानि।

वन संरक्षण अधिनियम, 1980 और राष्ट्रीय वन नीति, 1988

- भारत विभिन्न प्रकार के वनों के साथ दुनिया में अत्यधिक विविधता वाले देशों में से एक है। आधिकारिक तौर पर देश का 20 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र वन क्षेत्र में है। राष्ट्रीय वन नीति, 1988 का लक्ष्य भारत में वन क्षेत्र का कुल क्षेत्र के एक तिहाई तक विस्तार करना है।
- 1988 की राष्ट्रीय वन नीति में भी जंगलों में लगने वाली आग पर नियंत्रण के लिये खास मौसम में विशेष सावधानी बरतने और इसके लिये आधुनिक तरीके अपनाने की बात कही गई है, लेकिन अभी तक वन आयोजना और व्यवस्था को वह प्राथमिकता नहीं मिली है, जो मिलनी चाहिये थी।
- भारत में जंगलों का संरक्षण वन संरक्षण अधिनियम (1980) के कार्यान्वयन और संरक्षित क्षेत्रों की स्थापना के माध्यम से किया जाता है। भारत सरकार ने 597 संरक्षित क्षेत्रों की स्थापना की है जिनमें से 95 राष्ट्रीय उद्यान और 500 वन्यजीव अभयारण्य हैं। उपरोक्त क्षेत्र देश के भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 5% है।

भारत में वनों की स्थिति

- भारत के लगभग 8,02,088 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में वन हैं। इसमें से लगभग 7,08,073 किलोमीटर क्षेत्र में किसी-न-किसी तरह के वन पाए जाते हैं।
- भारत के वनों में कई तरह की जैव विविधता मिलती है, लेकिन ईंधन, चारे, लकड़ी की बढ़ती हुई माँग, वनों के संरक्षण के अपर्याप्त उपाय और वन भूमि के गैर-वन भूमि में परिवर्तित होने से जंगल लगातार कम होते जा रहे हैं।
- बढ़ती जनसंख्या के कारण वन आधारित उद्योगों एवं कृषि के विस्तार के लिये किये जाने वाले अतिक्रमण की वज़ह से वन भूमि पर भारी दबाव है।
- पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के निर्माण के लिये वन संरक्षण और विकास परियोजना के पथांतरण के बीच बढ़ते संघर्ष वन संसाधनों के प्रबंधन की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है।

उत्तराखंड में वनों की प्रकृति

उत्तराखण्ड का भौगोलिक क्षेत्रफल 53,483 वर्ग किलोमीटर है। इसमें 64.79% यानी 34,651.014 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र है। 24,414.408 वर्ग किलोमीटर वन क्षेत्र वन विभाग के नियंत्रण में है। वन विभाग के नियंत्रण वाले वन क्षेत्र में से लगभग 24,260.783 वर्ग किलोमीटर आरक्षित वन क्षेत्र है, शेष 139.653 वर्ग किलोमीटर जंगल वन पंचायतों के नियंत्रण में हैं। वन विभाग के नियंत्रण वाले वनों में से 3,94,383.84 हेक्टेयर में चीड़ के, 3,83,088.12 हेक्टेयर में बाँज के और 6,14,361 हेक्टेयर में मिश्रित जंगल हैं। लगभग 22.17% क्षेत्र वन रक्षित है।

स्थिति क्या है और क्या किया जाना चाहिये?

- कुछ समय पूर्व खाद्य एवं कृषि संगठन के विशेषज्ञों के दल ने अपनी एक विस्तृत रिपोर्ट में भारत में जंगल की आग की स्थिति को बहुत गंभीर और बेहद चिंताजनक बताया था।
- रिपोर्ट में कहा गया था कि आर्थिक और पारिस्थितिकी की दृष्टि से इस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया।
- वन कर्मचारियों के प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में सभी स्तरों पर आग से बचाव की तकनीक पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया।
- आग पर नियंत्रण के लिये कोई स्पष्ट योजना नहीं है और न ही इसकी जानकारी है।
- वनाग्नि प्रबंधन के प्रति ध्यान देने की अभी शुरुआत ही हो रही है और वन से जुड़ी अर्थव्यवस्था पर आग के प्रभाव के प्रति जागरूकता बहुत सीमित है।
- जंगल की आग पर यदि आँकड़े उपलब्ध हैं भी तो वे नाममात्र के हैं या विश्वास करने लायक नहीं हैं। ये सभी आँकड़े व्यवस्थित रूप से दर्ज भी नहीं हुए हैं।
- आग के मौसम की भविष्यवाणी करने की कोई व्यवस्था नहीं है तथा आग से खतरे का अनुमान, आग से बचाव और उसकी जानकारी के उपाय भी नहीं हैं।
- भारत को एक संपूर्ण वनाग्नि प्रबंधन व्यवस्था की ज़रूरत है, जो राज्यों में संस्थागत रूप में उपलब्ध हो।
- इसके लिये केंद्र सरकार को प्रशिक्षण, अनुसंधान और जागरूकता संबंधी सहायता उपलब्ध करानी चाहिये।
- जंगल में आग लगना एक स्थायी समस्या है तथापि इससे निपटने के लिये कभी कोई गंभीर प्रयास नहीं किया गया, हमेशा अस्थायी समाधान ही सामने आते हैं।
- आज भी वन विभाग, राष्ट्रीय दूरसंवेदन एजेंसी, भारतीय मौसम विभाग और भारतीय वन सर्वेक्षण संस्थान आदि संस्थाओं के बीच कोई तालमेल नहीं है।
- राज्यों के वन विभाग के पास जंगलों की आग से निपटने के लिये पर्याप्त संसाधन नहीं हैं। ऐसे में वन कार्यक्रमों में परिवर्तन लाकर 'राष्ट्रीय वनाग्नि अनुसंधान संस्थान' की स्थापना की जानी चाहिये, ताकि जंगल की आग के बारे में समन्वित अनुसंधान हो और उसके नतीजे निचले स्तर तक लागू हो सकें।
- किसी भी पहाड़ी जंगल में आग के फैलाव को रोकने के लिये उसे एक क्षेत्र तक सीमित रखना, प्रभावित क्षेत्र को अलग-अलग खंडों में बाँटना, पर्याप्त पानी का भंडार रखना, वायरलैस के जरिए कर्मचारियों का आपसी संपर्क और सड़क के रास्ते तेज़ी से पहुँचने वाले अग्निशमन दस्ते का होना ज़रूरी है। ये सभी सुविधाएँ खंड स्तर के वन अधिकारी को उपलब्ध होनी चाहिये, न कि 'फॉरेस्ट कंज़रवेटर' के स्तर पर।
- आज भी उत्तराखंड में जहाँ मिश्रित वन (बाँज, बुराँस और काफल जैसी प्रजातियों वाले जंगल) हैं उनमें आग लगने की घटनाएँ कम होती हैं और पानी की मौजूदगी के चलते उनमें आग से निपटना अपेक्षाकृत कम मुश्किल होता है।
- जंगल में लगने वाली आग जैव विविधता और जंगल की उत्पादन क्षमता में कमी का मुख्य कारण होती है। जंगल के पर्यावरण में घुसपैठ से असंतुलन बनने और आग नियन्त्रण का समुचित प्रशिक्षण न होने से आज इस तरह की घटनाएँ बहुत बढ़ गई हैं।
- वन क्षेत्र के लिये वित्तीय आवंटन में कमी और वनाग्नि नियंत्रण की व्यवस्था को कोई प्राथमिकता न दिया जाना भी आग को रोकने में असफलता का कारण रहा है।
- भारत का 92% से अधिक वन क्षेत्र सरकार के नियंत्रण में है और इनमें लगी किसी भी आग पर नियंत्रण सहित वन प्रबंधन का ज़िम्मा राज्यों के वन विभाग के पास होता है।
- इसके मद्देनज़र वनाग्नि प्रबंधन के लिये एक राष्ट्रीय योजना बनाना ज़रूरी है, ताकि इस संबंध में राज्यों को स्पष्ट दिशा-निर्देश मिल सकें और राष्ट्रीय उद्देश्यों को हासिल करने के लिये गतिविधियों में तालमेल बन सके।

वनाग्नि प्रबंधन कार्य-योजना

अभी तक देश के कुल 21 राज्यों ने केंद्र सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय को वनाग्नि प्रबंधन संबंधी अपनी कार्य-योजना प्रस्तुत की है। इनमें से महाराष्ट्र, उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश एवं हिमाचल प्रदेश द्वारा प्रस्तुत कार्य-योजना को केंद्र द्वारा सहमति प्रदान की जा चुकी है। बिहार, गुजरात, कर्नाटक, असम, तेलंगाना, मेघालय, अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह तथा चंडीगढ़ सहित कुल दस राज्यों एवं पाँच केंद्रशासित प्रदेशों ने अपनी कार्य-योजना अभी पेश नहीं की है।

कंट्रोल फायर लाइन

इसे अग्नि नियंत्रण रेखा कहा जाता है, यह वह सीमा रेखा है जिसके आगे आग को बढ़ने से रोकने का प्रयास किया जाता है। इन फायर कंट्रोल लाइनों में ऐसी वनस्पतियाँ उगाई जाती हैं, जो आग को फैलने से रोकने में कारगर साबित होती हैं। उत्तराखंड में लगभग 9,000 किमी. फायर लाइन की ज़रूरत है, लेकिन अभी यह केवल 2500 किमी. ही मौजूद है।

कंट्रोल्ड फायर: कई विशेषज्ञ मानते हैं कि सीमित तरीके से लगाई गई आग के लाभ भी हैं क्योंकि यह बड़ी दावाग्नि को रोक सकती है और जैव विविधता खत्म करने के बजाय उसे बढ़ा भी सकती है। ऐसी आग को कंट्रोल्ड फायर कहा जाता है, जो पहले वन विभाग की कार्य-योजना का हिस्सा हुआ करती थी। तब जनवरी के महीने जंगलों में कंट्रोल फायर लाइनें बनाई जाती थीं और इनमें एक निश्चित क्षेत्र को आग से जला दिया जाता था। इससे होता यह था कि कहीं भी आग लगे

और वह फैलती हुई इस क्षेत्र तक पहुँचे तो उसे और आगे बढ़ने के लिये कुछ नहीं मिलता था और वह वहीं थम जाती थी। आज भी कई जगहों पर ऐसी कंट्रोल फायर लाइनें बनती हैं, लेकिन इनका दायरा बढ़ाने की ज़रूरत है।

(टीम दृष्टि इनपुट)

रियो पृथ्वी सम्मेलन में भी हुई थी जंगल की आग पर चर्चा

1992 में रियो में हुए पृथ्वी सम्मेलन में जंगल में फैलने वाली आग से उत्पन्न होने वाली विभिन्न समस्याओं पर विस्तार से चर्चा की गई थी और इसके 21वें मसौदे के पैरा 11.2 में इस प्रकार उल्लेख है: ''भूमि के अनियंत्रित ह्रास और भूमि के दूसरे कामों में बढ़ते उपयोग, मनुष्य की बढ़ती ज़रूरतों, कृषि के विस्तार और पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाली प्रबंधन तकनीक से दुनियाभर के वनों के लिये खतरा पैदा हो गया है। जंगल की आग पर नियंत्रण पाने के अपर्याप्त साधन, चोरी-छिपे लकड़ी की कटाई को रोकने के प्रभावी उपाय न किया जाना और व्यापारिक गतिविधियों के लिये लकड़ी की कटाई आदि भी इसके लिये जिम्मेवार है। जानवर चराने, वातावरण में मौजूद प्रदूषण का घातक असर, विभिन्न क्षेत्रों को मिले आर्थिक प्रोत्साहन और अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों के लिये किये गए कुछ उपायों से भी यह संकट बढ़ा है। वनों के ह्रास से भूमि कटाव, जैव विविधता को नुकसान, वन्यजीवों की कमी और जल स्रोतों का ह्रास हुआ है। इससे जीवन की गुणवत्ता और विकास के अवसरों में भी कमी आई है।''

निष्कर्ष: पिछले कुछ वर्षों से देश के पहाड़ी राज्यों, विशेषकर उत्तराखंड के वनों में आग लगने की घटनाओं में काफी वृद्धि हुई है। लगभग सभी शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में इन घटनाओं की आवृत्ति एवं तीव्रता बढ़ी है। पहाड़ों के जंगलों में आग लगने की घटनाओं से हर साल बड़ी संख्या में पेड़ों, जीव-जंतुओं और पर्यावरण को तो नुकसान पहुँचता ही है, वहीं वायु प्रदूषण और ताप की समस्या भी क्षेत्र के पर्यावरण को प्रभावित करती है।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि वनों में लगी आग से उन क्षेत्र विशेषों का भौगोलिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिवेश व्यापक स्तर पर प्रभावित होता है। अतः इन घटनाओं को न्यूनतम किये जाने के प्रयास किये जाने चाहिये। आपदा प्रबंधन के समुचित उपायों के साथ-साथ 'आग के प्रति संवेदनशील वन क्षेत्र एवं मौसम' में वनों में मानवीय क्रियाकलापों को बंद या न्यूनतम किया जाना चाहिये तथा संवेदनशील क्षेत्रों में आधुनिकतम तकनीकों से युक्त संसाधनों के साथ पर्याप्त आपदा प्रबंधन बल की तैनाती की जानी चाहिये।

जंगल धू-धू कर जलते रहते हैं, वन संपदा खाक हो जाती है और वन विभाग सदैव की तरह मूकदर्शक बनकर असहाय बना बैठा रहता है। यदि वनों में आग लगने के बाद पहाड़ों पर इंद्र देवता की कृपादृष्टि न हो तो न जाने कब तक जंगल धधकते रहें। ऐसे में राज्य सरकार को वास्तव में वनों की सुरक्षा को लेकर संजीदा होने तथा ज़मीनी वस्तुस्थिति को समझते हुए जंगलों की आग से निबटने के लिये सभी पहलुओं का गंभीरता से अध्ययन कर ठोस रणनीति बनानी होगी। आग बुझाने के नए उपकरणों सहित उन तमाम ज़रूरतों को भी पूरा करना होगा, जो वनाग्नि नियंत्रण के लिये ज़रूरी हैं।

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/impact-of-hill-forests-on-environment-and-ecology